पेरिस
जनवरी २०, २००७

सन्देश संख्या ११३

पुर्त्तगाल के एक विद्वान (पी.एच.डी.) कर्मयोगी भक्त को पत्र

कर्त्ता और कार्य के बीच जब द्वैत नहीं रह जाता तब कर्मयोग (कार्य में उत्कृष्टता और सहजता) ही क्रियायोग हो जाता है । अर्थात् जब कार्य अपने स्वाभाविक प्रवाह में बिना किसी बाधा के सम्पन्न हो जाय और ''मैं कर रहा हूँ'' के आग्रह से उत्पन्न विभाजन रूपी बाधा वहाँ न हो । यह क्रियायोग और भी विशिष्ट हो जाता है जब इसे अन्तर्मुखीकरण की प्रक्रिया यथा–तालव्य क्रिया, अन्तर्मुखी प्राणायाम, नाभी–क्रिया, महामुद्रा, ठोकर क्रिया आदि के साथ किया जाय ।

कम ब्रह्मोद्भवं विद्धि
ब्रह्माक्षर समुद्भवम् ।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म
नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।।
(भगवद्गीता ३:१५)

कार्य और कर्म सर्वव्यापी चैतन्य (ब्रह्म) में उत्पन्न होते हैं । चैतन्य अक्षर अर्थात् न नहीं होने वाले में उत्पन्न होता है । सर्वव्यापी चैतन्य का बोध तभी होता है जब विभाजन अर्थात् ''मैं'' का विकल्प रहित सजगता की अग्नि में सतत् अर्पण किया जाय । यही वास्तविक यज्ञ है और क्रिया योग का स्वाध्याय (सांख्य) भी यही है ।

किन्तु हिन्दू आध्यात्मिक बाजार के धूर्त्त ''यज्ञ'' और ''अग्नि–होत्र'' को पश्चिमी देशों में लोकप्रिय बना रहे हैं । इसीलिए वहाँ के कुछ उत्साही लोगों द्वारा बर्तन विशेष, गाय का गोबर, घी, अन्य यज्ञ सामग्री तथा मन्त्र आयात किया जा रहा है तथा उन्हें भोले–भाले अनुयायियों के बीच अनुचित लाभ लेकर बेचा जा रहा है । इस तरह अब वहाँ ईसाइयत के अपराध बोध रूपी मनोरंजन के स्थान पर हिन्दू विश्वास–पद्धति रूपी उत्तेजना फैलायी जा रही है । शिवेन्दु भी कभी–कभी ऐसा बाहरी यज्ञ करता है लेकिन केवल एक प्रतीक के रूप में ताकि समझदारी और सजगता रूपी आन्तरिक अग्नि को जगाया जा सके जिसमें समस्त मानसिक पंजीकरण और उनके अवशेष–अवसाद जलकर भस्म बन जायें।

कर्म प्रयत्नरहित तथा सहजरूप से होना चाहिए । उसे न कम करो और न ही ज्यादा । यह चित्तवृत्ति में विभाजन रूपी ''मैं'' ही है जो तुम्हें चिन्ताग्रस्त करता है और तुम्हारे स्वास्थ्य और कल्याण को न करता है । संकल्प अहंकार का ही एक आकषक नाम है । अतः ईश्वर के प्रति संकल्पयुक्त समर्पण ''मै'' अर्थात् अहंकार का ही ईश्वर से विभाजित रहने का एक उपाय हो सकता है । जीवन की सहजावस्था भगवत्ता है जबकि मन की आपाधापी विभाजन है ।

मुक्ति में विभाजन नहीं होता । मेरे साथ होने के लिए तुम्हें पेरिस आने की आवश्यकता नहीं है । मैं तुम्हारे साथ हूँ । मुझे यह जानकर खुशी है कि तुम्हें कुछ महत्वपूर्ण कार्य दिए गए हैं । किसी भी चुनौती का सामना करने और अपने दायित्व के निर्वहन की तुम्हारी क्षमता के प्रति मुझे कोई भी शंका नहीं है । कार्य करना तुम्हारे वश में है किन्तु सफलता या असफलता किसी अन्य के हाथ में। निःसंशय रहो कि वह (भगवत्ता) ध्यान रखता है तथा वहन करता है । प्रयत्नरहित शान्ति में रहो । क्रिया जब प्रयत्नरहित होती है, वह ध्यान ही होता है । इसमें कोई संशय नहीं होना चाहिए । जब यथार्थता पर आधारित तथा मान्यताओं के प्रदूषण से रहित पर्याप्त अनुक्रिया होती है तब कोई भी प्रमाद नहीं हो सकता । बीच–बीच में संदेशों को दर्पण मानकर स्वाध्याय करने से ऊर्जायुक्त हुआ जा सकता है तथा पुनर्जन्म को उपलब्ध हुआ जा सकता है ।

कुछ भक्तों ने बुद्ध से पूछा :– ''क्या आपने ईश्वर से संबंध स्थापित कर लिया है?''

बुद्ध ने उत्तर दिया – नहीं । बल्कि इसके विपरीत, ईश्वर के सम्बन्ध में सारी अवधारणाओं से मेरा संबंध समाप्त हो गया है । अस्तित्व पूर्ण है, वहाँ अभाव नहीं है, अतः पाने के लिए कुछ भी शेष नहीं है ।

।। जय अस्तित्व (ईश्वर) ।।